https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 05, PP 177-184 (Total PP 08)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

Paithani Saree: A Study on the Conservation of Traditional Handicrafts of Maharashtra

Levant Ganpat Gavande [a]*

[a] *Assistant Professor, MVPS's Sharadchandraji Pawar College of Architecture, Nashik*
[a]*Email: l.gavande@gmail.com*

Abstract

The traditional handicrafts rooted in the soil of Maharashtra are not merely symbols of beauty, but also a living expression of the deeply connected cultural consciousness of the state. Generation after generation, these arts have preserved the life values, beliefs, and traditions of society, but due to the rapid pace of the modern era, industrialization, and changing consumerist thinking, these invaluable arts are being neglected and are gradually on the verge of extinction. This research effort focuses on the specific traditional arts of Maharashtra: Paithani, weaving, and manufacturing. By meticulously studying the historical background, cultural significance, and social role of these arts, this research highlights their current situation and challenges. There is a need to revive these arts as living traditions, rather than confining them to museums.

The research extensively analyzes practical conservation measures such as digitalization, educational dissemination, innovation, government support, GI tags, and handicraft tourism. In particular, this study emphasizes that if traditional art and modern technology are coordinated, these endangered traditions can be given new life. The objective of this research is not merely conservation, but to give these arts a respectable identity and to create opportunities for self-sufficiency and sustainable livelihoods for local artisans. Thus, this study presents a significant effort towards the conservation of traditional Maharashtrian handicrafts and the empowerment of the socio-economic status of artisans.

महाराष्ट्र की मिट्टी में रची-बसी पारंपरिक हस्तकलाएं न केवल सौंदर्य का प्रतीक हैं, बल्कि वे राज्य की गहराई से जुड़ी सांस्कृतिक चेतना की जीवंत अभिव्यक्ति भी हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन कलाओं ने समाज के जीवन-मूल्यों, आस्थाओं और परंपराओं को संरक्षित रखा है, लेकिन आधुनिक युग की तेज़ गति, औद्योगीकरण और बदलती उपभोक्तावादी सोच के चलते ये अमूल्य कलाएं उपेक्षित होकर धीरे-धीरे विलुप्त होने की कगार पर हैं। यह शोध प्रयास महाराष्ट्र की विशिष्ट पारंपरिक कलाओं पैठणी, बुनाई, निर्माण पर केंद्रित है। इन कलाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक महत्व तथा सामाजिक भूमिका का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए, यह शोध उनके वर्तमान हालात और चुनौतियों को रेखांकित करता है। इन कलाओं को केवल संग्रहालयों तक सीमित न रखकर, जीवंत परंपरा के रूप में पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

शोध में संरक्षण के व्यावहारिक उपायों जैसे डिजिटलीकरण, शैक्षणिक प्रसार, नवाचार, सरकारी सहायता, जीआई टैग, तथा हस्तकला पर्यटन को विस्तार से विश्लेषित किया गया है। विशेष रूप से यह अध्ययन इस बात पर बल देता है कि यदि पारंपरिक कला और आधुनिक तकनीक का समन्वय किया जाए, तो इन विलुप्तप्राय परंपराओं को नया जीवन मिल सकता है। इस शोध का उद्देश्य केवल संरक्षण नहीं, बल्कि इन कलाओं को सम्मानजनक पहचान दिलाना और स्थानीय कारीगरों के लिए आत्मनिर्भरता एवं सतत आजीविका के अवसर पैदा करना है। इस प्रकार, यह अध्ययन महाराष्ट्र की पारंपरिक हस्तकलाओं के संरक्षण और कारीगरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास प्रस्तुत करता है।

Keywords: Maharashtra, Traditional Handicraft, Cultural Preservation, Dying Art, Paithani, Digitalization, Local Artisans, Handicraft Tourism.

महाराष्ट्र, पारंपरिक हस्तकला, सांस्कृतिक संरक्षण, लुप्त होती कला, पैठणी, डिजिटलीकरण, स्थानीय कारीगर, हस्तकला पर्यटन।

Received: 8/4/2025
Published: 8/31/2025
----
* Corresponding author.

प्रस्तावना (Introduction)

भारत की सांस्कृतिक विविधता एक बगीचे की तरह है, जिसमें हर प्रांत अपनी विशिष्ट सुगंध और रंग लेकर उपस्थित होता है। इस सांस्कृतिक उपवन में महाराष्ट्र की भूमिका अत्यंत समृद्ध, सजीव और प्रेरणादायक रही है। यहां की कला, और परंपराएं केवल सौंदर्य का अनुभव नहीं करातीं, बल्कि सामाजिक जीवन, धार्मिक विश्वासों और ऐतिहासिक चेतना की गहराई से जुड़ी होती हैं।

पैठणी बुनाई जैसी पारंपरिक कलाएं महाराष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न अंग हैं, जिनका ऐतिहासिक, धार्मिक और सामाजिक दृष्टियों से विशेष महत्व है। किंतु समय के साथ, औद्योगीकरण ने पारंपरिक आजीविका की संरचना बदल दी और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों ने त्वरित लाभ को प्राथमिकता दी, जिसके परिणामस्वरूप ये कलाएं धीरे-धीरे हाशिए पर चली गईं। आधुनिक जीवनशैली, नई तकनीकें और बदलते बाजार ने कारीगरों की पहचान, सम्मान और आजीविका के स्रोत को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। यह शोध-कार्य दृढ़ प्रयास है, उन विलुप्तप्राय हस्तकला परंपराओं को पुनर्जीवित करने का, जो आज भी अपनी मौलिकता और सांस्कृतिक महत्ता के कारण संरक्षण योग्य हैं। यह अध्ययन न केवल इन कलाओं की वर्तमान स्थिति और चुनौतियों को समझने की कोशिश करता है, बल्कि उनके संरक्षण और पुनर्संवर्धन के लिए व्यवहारिक उपाय भी प्रस्तावित करता है। उद्देश्य है परंपरा और प्रगति के बीच एक ऐसा सेतु बनाना, जहाँ संस्कृति जीवित रहे और कारीगरों को सम्मानपूर्ण जीवन मिले।

शोध की उद्देश्य (Objectives of the Study)

सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थों को समझना - यह जानने की कोशिश करना कि ये कला लोगों के जीवन, संस्कृति और अर्थव्यवस्था से किस तरह जुड़ी हुई हैं, और किस तरह उनका महत्व समय के साथ बदलता गया है।

संरक्षण के उपायों का विश्लेषण - यह आकलन करना कि किन माध्यमों से इन पारंपरिक कलाओं को पुनः सशक्त और जीवंत बनाया जा सकता है, चाहे वह डिजिटलीकरण हो, शैक्षणिक पहल हों या बाजार से प्रत्यक्ष जुड़ाव स्थापित करना।

अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

इस शोध में मुख्यतः गुणात्मक पद्धति अपनाई गई, क्योंकि यह पारंपरिक कला की गहराई को समझने के लिए सबसे उपयुक्त मानी गई। जानकारी संकलित करने हेतु कारीगरों से प्रत्यक्ष संवाद (साक्षात्कार), उनके कार्य का निकट से निरीक्षण (प्रत्यक्ष अवलोकन) और संबंधित स्थलों का दौरा (क्षेत्र भ्रमण) किया गया। साथ ही, विभिन्न पुस्तकों, सरकारी रिपोर्टों और GI टैग से संबंधित स्रोतों जैसी द्वितीयक सामग्रियों का भी सहारा लिया गया। यह

अध्ययन महाराष्ट्र के नाशिक, औरंगाबाद ज़िलों में जाकर किया गया, जहाँ इन पारंपरिक कलाओं से जुड़े अनुभवी कारीगरों से मुलाकात की गई। उनसे मिली जानकारी ने न सिर्फ इन हस्तकला की तकनीकी बारीकियाँ समझने में मदद की, बल्कि उनकी सामाजिक स्थिति, संघर्ष और उम्मीदों को भी करीब से जानने का मौका दिया।

महाराष्ट्र की प्रमुख पारंपरिक हस्तकलाएँ

पैठणी बुनाईः एक सांस्कृतिक और हस्तकला परंपरा का विश्लेषण : पैठणी साड़ी को केवल एक परिधान के रूप में देखना इसके गहरे सांस्कृतिक महत्व को कम आँकना होगा। यह साड़ी महाराष्ट्र की गौरवशाली हस्तकला परंपरा का प्रतीक है, जिसकी उत्पत्ति सातवाहन काल तक मानी जाती है। मूलतः औरंगाबाद के पास स्थित पैठण गाँव में विकसित इस कला को शाही संरक्षण प्राप्त रहा है। यह केवल बुनाई का उत्कृष्ट उदाहरण नहीं, बल्कि एक जीवंत परंपरा है, जिसमें पीढ़ियों से कारीगर अपने कौशल, धैर्य और समर्पण से जीवन की बुनावट करते आ रहे हैं। पैठणी साड़ी की विशेष पहचान उसके जटिल और बारीक डिज़ाइन में है, जिसमें रेशम के धागों के साथ शुद्ध सोने-चाँदी की ज़री का प्रयोग किया जाता है। इसके पल्लू और बॉर्डर पर बने मोर, कमल, नारियल, अशर्फी और अष्टकोणीय आकृतियाँ पारंपरिक प्रतीकों के रूप में अत्यंत लोकप्रिय हैं। रंग संयोजन भी विशिष्ट होता है, जैसे 'नारंगी-नीला' और 'बैंगनी-हरा', जो इसे अन्य साड़ियों से अलग बनाता है। पैठणी की बुनाई पूरी तरह हाथ से की जाती है, और एक साड़ी को बनाने में एक से तीन महीने तक का समय लग सकता है, यह उसकी बारीकी और डिज़ाइन पर निर्भर करता है। यह प्रक्रिया इतनी सूक्ष्म और श्रमसाध्य होती है कि हर पैठणी एक तरह से कलात्मक धरोहर बन जाती है।

आज, बदलते फैशन रुझानों और मशीन से बने विकल्पों के बावजूद यह परंपरा जीवित है, किंतु अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है। रेशम और ज़री की बढ़ती कीमतें कारीगरों के लिए कठिनाई पैदा कर रही हैं, साथ ही बाजार में मशीन से निर्मित नकली पैठणी का प्रसार भी हो चुका है। इसके बावजूद, औरंगाबाद, येवला और नासिक के कुछ समर्पित कारीगर आज भी इस कला को अपने हाथों और दिलों से जीवित रखे हुए हैं। पैठणी उनके लिए केवल साड़ी नहीं, बल्कि आत्मा का एक हिस्सा है जिसे वे हर बुनावट में ढालते हैं।

Figure 3. Bundles of Colored Silk Threads Used in Paithani Weaving

धागों की तैयारी और रंगाई : पैठणी साड़ी की बुनाई का आरंभ रंग-बिरंगे धागों की दुनिया से होता है, जिसमें केवल रंग ही नहीं, बल्कि समय, परंपरा और धैर्य की गहरी परतें समाई होती हैं। सबसे पहले उच्च गुणवत्ता वाले रेशमी धागों का चयन किया जाता है, जो ककून (कोष) से निकाले जाते हैं। इन धागों पर 'सेरिसिन' नामक प्राकृतिक गोंद की परत होती है, जिसे हटाने के लिए उन्हें गर्म पानी में हल्के साबुन के साथ धोया जाता है। यह मात्र सफाई की प्रक्रिया नहीं, बल्कि धागों को कोमल, चमकदार और रंग सोखने के लिए उपयुक्त बनाने का एक महत्वपूर्ण चरण होता है।

स्वच्छ किए गए ये धागे फिर रंगों में प्रवेश करते हैं। पहले के ज़माने में हल्दी, पलाश, कात्था जैसे प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल होता था। अब आधुनिकता ने कृत्रिम रंगों को लाया है, जो टिकाऊ हैं और विविध रंगों की संभावना खोलते हैं। रंगाई के दौरान धागों को सावधानी से रंग के घोल में डुबोया जाता है, और रंग की गहराई के अनुसार समय तय किया जाता है। कुछ रंगों को टिकाने के लिए 'मॉर्डंट' जैसे रसायनों का भी प्रयोग होता है।

रंगाई के बाद धागों को तेज़ धूप में नहीं, बल्कि कोमल छांव में सुखाया जाता है। कारण यह कि सीधी धूप रंग को फीका कर सकती है। यह प्रक्रिया भी बड़ी ध्यानपूर्वक Figure 4. Coloring Process of Silk Threads for Paithani Weaving होती है - क्योंकि अब हर धागा पैठणी की कहानी का एक रंगीन अक्षर बन चुका होता है।

जब धागे पूरी तरह सूख जाते हैं, तो उनका अगला रूपांतरण शुरू होता है। इन्हें बुनाई के लिए विशेष रूप से ताना (warp) और बाना (weft) के रूप में तैयार किया जाता है। यह मात्र तकनीकी प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक सृजनात्मक तैयारी होती है - मानो कोई कलाकार अपने रंग और ब्रश सलीके से सजा कर सृजन के लिए तैयार हो।

पैठणी में 'जरी' - वैभव की सुनहरी किनारः पैठणी साड़ी की आत्मा उसके पल्लू और चौड़े किनारों (सरपाट बॉर्डर) पर की गई जरी कढ़ाई में बसती है। पुराने समय में यह जरी शुद्ध सोने या चांदी की हुआ करती थी। चांदी की महीन तार पर पारंपरिक तरीके से सोने की परत चढ़ाकर 'सोनझरी' (स्वर्णजरी) और 'चांदझरी' बनाई जाती थी। जब इन धागों से साड़ी बुनती थी, तो पल्लू पर झिलमिलाते अलंकार एक अलग ही दिव्यता और गौरव का अनुभव कराते थे।

शुद्ध सोना और चांदी, तांबे की पतली तारों Figure 5 Silk and Zari Threads Used in Paithani Saree Making पर कसकर लपेटा जाता था। इसके बाद उन तारों को पीटकर एक समतल धात्विक धागा (झाकतारी) तैयार किया जाता, जिसे पॉलिश करने के बाद बुनाई या नक्काशी के काम में लगाया जाता। यह काम अत्यधिक धैर्य, बारीकी और परंपरागत प्रशिक्षण की मांग करता था। जरी बनाने वाले कारीगर परिवार दर परिवार इस शिल्प को पीढ़ियों से निभाते आए हैं।

असली सोने-चाँदी की जरी के कारण पैठणी साड़ी को राजसी वस्त्र का विशेष गौरव प्राप्त था। ऐसी साड़ियाँ आमतौर पर केवल समृद्ध व्यापारी, विद्वान ब्राह्मण या शाही परिवार की स्त्रियाँ ही पहनती थीं, वह भी खास धार्मिक या वैवाहिक अवसरों पर। कई बार इनकी ऊँची कीमत के कारण इन्हें दागिनों की तरह तिजोरी में सुरक्षित रखा जाता था।

आज के समय में रासायनिक पॉलिश वाली कृत्रिम झाकतारी का उपयोग बढ़ गया है, जिससे साड़ियों की लागत घट जाती है और अधिक लोगों तक पहुँचना संभव होता है। यद्यपि इससे पारंपरिक आभा और वैभव में कुछ कमी आई हो, फिर भी महाराष्ट्र के अनेक पारंपरिक बुनकर आज भी अपनी प्राचीन बुनाई पद्धतियों का पालन करते हुए, हस्तनिर्मित असली जरी के माध्यम से पैठणी की प्रतिष्ठा को संजोए रखते हैं। जरी की चमक, उसकी आभा और बारीक बुनावट भारतीय सौंदर्यशास्त्र में 'रस' और 'श्रृंगार' का सजीव प्रतीक मानी जाती है। एक असली पैठणी साड़ी में 10,000 से भी अधिक जरी के टाँके हो सकते हैं, जो उसे मात्र परिधान न बनाकर एक अनुपम कलाकृति का रूप देते हैं। जब कोई महिला पैठणी पहनती है, तो वह केवल साड़ी नहीं, बल्कि पीढ़ियों से संचित परंपरा और गौरव को अपने साथ धारण करती है।

पारंपरिक हस्तकला की वर्तमान स्थिति

महाराष्ट्र की पारंपरिक हस्तकला, जो कभी अपनी विशिष्टता और समृद्धि के लिए जानी जाती थी, आज कई चुनौतियों का सामना कर रही है। इन परंपराओं को आगे बढ़ाने और सुरक्षित रखने में कई मुश्किलें आ रही हैं, जिससे शिल्पकलाओं का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है।

कच्चे माल की लागत में वृद्धिः आजकल कच्चे माल की कीमतों में लगातार वृद्धि हो रही है, जिससे कारीगरों के लिए सामग्री प्राप्त करना मुश्किल हो गया है। पारंपरिक कारीगरों के समक्ष कच्चे माल की बढ़ती कीमतें एक गंभीर चुनौती बन चुकी हैं। उदाहरणस्वरूप, पैठणी साड़ी के निर्माण में प्रयुक्त रेशम और ज़री की कीमतों में अत्यधिक वृद्धि हुई है, जिससे उत्पादन की लागत बहुत बढ़ गई है।

कच्चे माल की लागत में बढ़ोतरी और नकली सामग्रियों की उपस्थिति के कारण ये पारंपरिक हस्तशिल्प अब कारीगरों के लिए न तो लाभदायक रह गए हैं और न ही स्थायी। इससे न केवल उनकी आजीविका पर असर पड़ा है, बल्कि शिल्प की गुणवत्ता और ग्राहकों का विश्वास भी कमजोर हुआ है।

कारीगरों को पर्याप्त बाज़ार नहीं मिलनाः कारीगरों को पर्याप्त बाज़ार न मिलनाः पहले पारंपरिक हस्तकला के लिए व्यापक और स्थायी बाजार उपलब्ध था, किंतु अब अवसरों और मांग में स्पष्ट कमी देखी जा रही है, जिसके कारण कारीगर अपने उत्पादों के लिए उपयुक्त व स्थिर विपणन मंच पाने में असमर्थ हो रहे हैं। कई बार उन्हें अपनी कलाकृतियों को बेचने के लिए मध्यस्थों का सहारा लेना पड़ता है, जिनके द्वारा तय की जाने वाली कीमतें कारीगरों के लिए न तो लाभकारी होती हैं और न ही उनकी मेहनत के बराबर होती हैं।

मध्यस्थों द्वारा शोषणः कारीगरों से सीधे बातचीत करते समय यह भी सामने आया कि पारंपरिक शिल्पकला के कारीगरों को अक्सर मध्यस्थों द्वारा शोषित किया जाता है। कारीगर अपनी कला का निर्माण करते हैं, लेकिन बाज़ार में इसे बेचने के लिए उन्हें बिचौलियों पर निर्भर रहना पड़ता है। ये मध्यस्थ कारीगरों से सस्ते में सामग्री खरीदकर, उसे बहुत अधिक दाम पर बेचते हैं, जिससे कारीगरों का लाभ बहुत कम हो जाता है। यह शोषण कारीगरों की आर्थिक स्थिति को और भी कमजोर कर देता है।

युवाओं का झुकाव अन्य क्षेत्रों की ओर: युवाओं का पारंपरिक कला की ओर रुझान घटता जा रहा है। आधुनिक शिक्षा और बेहतर करियर विकल्पों की ओर बढ़ता झुकाव पारंपरिक कलाओं को एक अस्थिर और अल्प-आय वाला पेशा बना देता है। इसी कारणवश युवा पीढ़ी इन कलाओं को अपनाने में रुचि नहीं दिखा रही है, जिससे इनका संरक्षण और प्रसार एक गंभीर चुनौती बन गया है इसी कारणवश युवा पीढ़ी इन कलाओं को अपनाने में रुचि नहीं दिखा रही है, जिससे इनका संरक्षण और प्रसार एक गंभीर चुनौती बन गया है मैंने खुद नाशिक के ललित कला कॉलेज में पढ़ाते समय देखा कि कई छात्र आधुनिक करियर के कारण अपनी चली आ रही पारंपरिक कला में कम रुचि दिखाते हैं, जिससे इन कलाओं के संरक्षण और विकास में कठिनाइयाँ आ रही हैं।"

संरक्षण हेतु संभावित रणनीतियाँ (Preservation Strategies)

महाराष्ट्र की पारंपरिक शिल्पकलाओं को संरक्षित कर उन्हें आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए कई प्रभावी रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं। इन कलाओं का संरक्षण केवल सामाजिक दायित्व ही नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर को सम्मानित करने का एक महत्वपूर्ण साधन भी है। नीचे कुछ प्रमुख उपाय दिए गए हैं, जो पारंपरिक कला के संरक्षण में सहायक हो सकते हैं।

a) डिजिटलीकरण और आर्काइविंग (Archiving)

आज के डिजिटल युग में पारंपरिक कला को डिजिटली रूप में संरक्षित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कला की तकनीक, डिज़ाइन और शैली का डिजिटल रूप में दस्तावेजीकरणः पारंपरिक शिल्पकला के डिज़ाइन और तकनीकों का एक स्थायी डिजिटल रिकॉर्ड तैयार किया जा सकता है। इसके माध्यम से इन कलाओं का समृद्ध इतिहास और उनकी प्रक्रिया इंटरनेट के ज़रिए सभी लोगों तक पहुँचाई जा सकती है।

डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का योगदानः डिजिटल मार्केटप्लेस और अन्य प्लेटफॉर्म्स कारीगरों को वैश्विक बाजार से जोड़ते हैं। ये प्लेटफॉर्म पारंपरिक कला को ऑनलाइन प्रदर्शित करने, बेचने और प्रचारित करने के व्यापक अवसर प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया और वेबसाइट्स के जरिए कलाकार सीधे ग्राहकों से जुड़ सकते हैं, अपनी कहानी साझा कर सकते हैं और अपने ब्रांड की पहचान बढ़ा सकते हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स कारीगरों

को नई तकनीकों, डिज़ाइन प्रवृत्तियों और ग्राहक प्रतिक्रियाओं तक सीधी पहुँच प्रदान करते हैं, जिससे उनकी कला का सतत विकास संभव होता है।

QR कोड आधारित कला परिचयः कला उत्पादों पर QR कोड लगा कर, दर्शकों को इनकी पारंपरिक प्रक्रियाओं और कला के बारे में जानकारी दी जा सकती है। यह न केवल कला के प्रचार-प्रसार में मदद करेगा, बल्कि कारीगरों को भी उनके उत्पादों की सही पहचान दिलाएगा।

b) शैक्षणिक पहल

पारंपरिक कला को शैक्षिक दृष्टिकोण से बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

विद्यालयों व कॉलेजों में पारंपरिक हस्तकला आधारित पाठ्यक्रमः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप, विद्यालयों और महाविद्यालयों में पारंपरिक हस्तकला को अंतरविषयक, अनुभवात्मक एवं मूल्य-आधारित शिक्षा के हिस्से के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। इन कलाओं को बिना अंकभार वाले "audit courses" या हस्तकला कार्यशालाओं (workshops) के रूप में प्रस्तुत कर विद्यार्थियों को स्थानीय कारीगरों से सीधे जुड़ने का अवसर दिया जा सकता है। इससे न केवल उन्हें सांस्कृतिक विरासत की गहरी समझ मिलेगी, बल्कि उनके भीतर कौशल, संवेदनशीलता और संरक्षण की भावना भी विकसित होगी।

कारीगरों के लिए वर्कशॉप्स और प्रमाणपत्र कोर्स: कारीगरों को प्रशिक्षित करने के लिए वर्कशॉप्स और कोर्स आयोजित किए जा सकते हैं, जिससे वे अपनी कला को नई तकनीकों से जोड़ सकें और इसे और अधिक प्रभावी बना सकें। प्रमाणपत्र कोर्स उनकी कला को एक पेशेवर पहचान भी दे सकते हैं।

c) सरकारी योजनाएं और GI टैग

सरकार का समर्थन इन कलाओं के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

GI टैग से उत्पादों की पहचान और मूल्य में वृद्धिः जब पारंपरिक कला को GI (Geographical Indication) टैग प्राप्त होता है, तो उन उत्पादों को वैश्विक स्तर पर विशिष्ट पहचान मिलती है। इससे न केवल उनके बाजार मूल्य में वृद्धि होती है, बल्कि कारीगरों को अपनी कला के प्रति अधिक सम्मान और कानूनी सुरक्षा भी प्राप्त होती है।

"हस्तशिल्प विकास एवं विपणन निगम" (HDMCI) जैसी संस्थाएं प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं: सरकार के विभिन्न संगठन, जैसे "हस्तशिल्प विकास निगम", कारीगरों को समर्थन देने, उनके उत्पादों के प्रचार-प्रसार और बाजार उपलब्धता में मदद कर सकते हैं। ऐसी संस्थाएँ कारीगरों को संसाधन, प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता प्रदान कर सकती हैं।

राज्य सरकार की योजनाएँ और सहयोगः महाराष्ट्र राज्य सरकार पारंपरिक हस्तकलाओं के संरक्षण हेतु कई प्रभावी योजनाएँ चला रही है, जो कारीगरों के लिए प्रशिक्षण, विपणन, और आर्थिक सहयोग प्रदान करती हैं।

महाराष्ट्र स्टेट हैंडलूम कॉर्पोरेशन (MSHC): यह संस्था पारंपरिक बुनकरों के लिए प्रशिक्षण, कच्चा माल, और विपणन सहायता उपलब्ध कराती है। साथ ही, "हैंडलूम मार्क" और "भारत हैण्डलूम ब्रांड" जैसे प्रमाणन के माध्यम से गुणवत्ता और पहचान को बढ़ावा देती है।

खादी ग्रामोद्योग (KVIC): ग्रामीण क्षेत्रों में खादी व हस्तकला से जुड़ी महिला और युवा कारीगरों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण और आर्थिक सहायता प्रदान करता है। महाराष्ट्र महिला आर्थिक विकास महामंडल (MAVIM) के तहत भी महिला कारीगरों को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

एक जिला एक उत्पाद (ODOP): महाराष्ट्र के सभी जिलों में विशिष्ट पारंपरिक उत्पादों की पहचान कर उन्हें वैश्विक ब्रांडिंग, विपणन और निर्यात की दिशा में बढ़ावा दिया जा रहा है।

d) नवाचार और डिजाइन हस्तक्षेप

पारंपरिक शिल्प को समकालीन डिज़ाइन और फैशन में रूपांतरित करना भी एक प्रभावी तरीका हो सकता है।

पारंपरिक डिज़ाइनों को आधुनिक वस्त्र व सजावटी वस्तुओं में रूपांतरित करनाः पारंपरिक डिज़ाइन और कला को आधुनिक वस्त्र, बैग, आभूषण और सजावटी वस्त्रों में बदला जा सकता है, जिससे वे युवा पीढ़ी के बीच अधिक प्रचलित हो सकते हैं।

फैशन, होम डेकोर और इको-फ्रेंडली उत्पादों में पारंपरिक कला का समावेशः पारंपरिक कला का उपयोग पर्यावरण के अनुकूल उत्पादों में किया जा सकता है, जैसे कपड़े, होम डेकोर आइटम्स और कलाकृतियाँ। इससे न केवल इन कलाओं को एक नवीन दिशा मिलेगी, बल्कि वे वैश्विक बाजार में भी अपनी विशेष पहचान बना पाएंगी।

e) **पर्यटन के माध्यम से संरक्षण**

हस्तकला को बढ़ावा देने के लिए पर्यटन को एक ज़रिया बनाया जा सकता है। "हस्तकला पर्यटन" के माध्यम से प्रत्यक्ष अनुभवः राज्यभर के कारीगरों के गांवों और कार्यशालाओं में पर्यटकों को ले जाकर उन्हें पारंपरिक कला का सीधे अनुभव कराया जा सकता है। यह न केवल पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहित करेगा, बल्कि कारीगरों के लिए स्थिर आय का एक सशक्त स्रोत भी बनेगा।

राज्य सरकार द्वारा हस्तकला मेले, लाइव डेमो आदि का आयोजन: राज्य सरकार द्वारा हस्तकला मेले, कारीगरों के लाइव डेमो और कार्य शालाओं का आयोजन किया जा सकता है, जिससे लोगों को इन कलाओं के बारे में जानकारी मिलती है और कारीगरों को अपने उत्पादों को दिखाने का एक मंच मिलता है। इन रणनीतियों को प्रभावी रूप से लागू करने से महाराष्ट्र की पारंपरिक कला को न केवल संरक्षित किया जा सकता है, बल्कि उसे एक नई ऊँचाई भी दी जा सकती है। इन प्रयासों से कारीगरों के जीवन स्तर को भी बेहतर किया जा सकता है और पारंपरिक कला के प्रति सम्मान बढ़ सकता है।

6. निष्कर्ष (Conclusion):

महाराष्ट्र की पारंपरिक हस्तकलाएँ, विशेषकर पैठणी बुनाई, राज्य की सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य धरोहर हैं। ये कलाएं केवल शिल्प नहीं, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक चेतना की प्रतीक हैं। हालांकि आधुनिक युग में औद्योगीकरण, महंगा कच्चा माल, बाजार की कमी और युवाओं की उदासीनता के चलते ये कलाएं संकट में हैं। कारीगरों को उचित पहचान, लाभ और स्थिर बाजार नहीं मिल पा रहा है। यह शोध दर्शाता है कि डिजिटलीकरण, शैक्षणिक प्रसार, जीआई टैग, सरकारी सहायता और हस्तकला पर्यटन जैसी रणनीतियाँ इन कलाओं के संरक्षण और कारीगरों के सशक्तिकरण में प्रभावी साबित हो सकती हैं। पारंपरिक कला और आधुनिक तकनीक का समन्वय इन विलुप्त होती कलाओं को पुनर्जीवित करने में सहायक हो सकता है। इस संदर्भ में, यह अध्ययन एक महत्वपूर्ण और सार्थक प्रयास साबित हो रहा है।

सिफारिशें (Recommendations):

- कारीगरों को सीधी बाजार पहुँच देने हेतु ई-कॉमर्स प्रशिक्षण।
- जीआई टैग वाले शिल्पों के लिए ब्रांडिंग और प्रमाणीकरण।
- युवाओं में हस्तकला के प्रति आकर्षण हेतु डिजिटल प्रतियोगिताएं, इंटर्नशिप।
- "एक जिला एक उत्पाद" (ODOP) जैसी योजनाओं में इन कलाओं को समाविष्ट करना।

संदर्भ (References):

1. भारत सरकार, हस्तशिल्प विभागः वार्षिक रिपोर्ट, नई दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन, 2023.
2. जीआई रजिस्ट्री, महाराष्ट्र से संबंधित जीआई टैग सूची, चेन्नईः भारत सरकार, 2024.
3. गिरीश, एस. पारंपरिक शिल्पकला का भविष्य, नई दिल्लीः संस्कृति प्रकाशन, 2018.
4. “कला और सांस्कृतिक अध्ययन विशेषांक” युनिवर्सिटी रिसर्च जर्नल्स, खंड 22, अंक 3, 2024.
5. संशोधकाने घेतलेला वैयक्तिक छायाचित्र, येवला - 2025.
6. Geographical Indications Registry. Paithani Sarees and Dress Materials. Government of India, Intellectual Property India, 2010. PDF. Accessed 4 Aug. 2025.